International Journal of Multidisciplinary Research and Development 2015; 2(1): 132-133

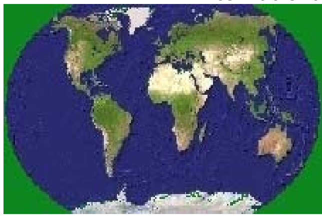

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

IJMRD 2015; 2(1): 132-133
www.allsubjectjournal.com
Received: 11-12-2014
Accepted: 08-01-2015
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

डॉ0 नन्दिनी समाधिया
(संस्कृत) 1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी।

Correspondence:
डॉ0 नन्दिनी समाधिया
(संस्कृत) 1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी।

मनुस्मृति में कर्म तथा जगत की उत्पति एवं ऋचाओं का महत्व

डॉ0 नन्दिनी समाधिया

(क) कर्म तथा जगत की उत्पत्ति :–

उस ईश्वर ने प्राणियों, कर्मस्वभाव वाले अचेतनों, देवों एवं सांध्यों (देव विशेष) के सूक्ष्मगण तथा सनातन यज्ञ का सृजन किया। 'कर्माणि आत्मा स्वभावो येषां तेषाम्' व्युत्पत्ति करके कर्मात्मन् का अर्थ अचेतन ग्रावा आदि पदार्थ है। साध्यानाम्–साध्य एक प्रकार के देव विशेष हैं। उनके सूक्ष्म गण का निर्देश करने के लिये पृथक् पाठ किया गया है। सनातनं यज्ञम्–ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों को सनातन माना गया है। क्योंकि इनका कल्पान्तर में भी अनुमान होगा। [1]

मनुस्मृतेर् द्वादशेऽत्राऽध्याये भाषार्थ उच्यते।
कुल्लूकोक्तार्थमादाय शिवाख्येन द्विजन्मना।।

हे पापरहित भृगुजी, आप ने चारों वर्णों का यह सम्पूर्ण धर्म बताया, अब हम लोगों को कर्मों के फलों की अगले जन्म में होने वाली प्राप्ति के यथार्थ रूप में बताइए। उन महर्षियों को मनुशिष्य धर्मबुद्धि उन भृगुजी ने 'इस सम्पूर्ण कर्मसंबंध के फलों के निर्णय को सुनिए' मन से वचन से और शरीर से होने वाली कर्म शुभ फलों को अथवा अशुभ फलों को देने वाला होता है। मनुष्यों की उत्तम, अधम और मध्यम गतियां भी कर्म से ही मिलने वाली हैं। इस संसार में देहधारी के मन में, वाणी में और शरीर में आश्रित उत्तम, मध्यम और अधम तीन श्रेणी के और दश लक्षणों से युक्त उस कर्म का प्रवर्तक तो मन को ही जाने।

परद्रव्यों को किसी तरह भी प्राप्त करने की इच्छा करना, मन से अनिष्ट कार्य करने का वारवार विचार करना, असत्य पक्ष में आग्रह करना ये मन के तीन प्रकार के (पापरूप) कर्म हैं। कठोर वचन बोलना, झूठा बोलना, परोक्ष में दूसरे के दोषों को कहना और अपने से सर्वथा असंबद्ध विषय में अधिक बोलना ये वाणी के चार प्रकार के कर्म हैं। नहीं दिए गए दूसरे के द्रव्यों को लेना, शास्त्र के विधानों को छोड़कर स्वेच्छा से प्राणियों की हिंसा करना और दूसरे की पत्नी में गमन (मैथुन) करना ये शरीर से किए जाने वाले तीन प्रकार के (पापरूप) कर्म हैं।

कर्म करने वाला यह देही मन से किए गए कर्म के शुभ अथवा अशुभ फल को मन से ही भोगता है, वाणी से किए गए कर्म के शुभ अथवा अशुभ फल को वाणी से ही भोगता है और शरीर से किए गए कर्म से शुभ अथवा अशुभ फल को शरीर से ही भोगता है। (गलत शरीर से किए जाने वाले तीन प्रकार के गलत कर्मों को, वाणी से किए जाने वाले चार प्रकार के गलत कर्मों को और मन से किए जाने वाले तीन प्रकार के गलत कर्मों को, इन दश अधर्म के मार्गों को छोड़ दे।)

शरीर से किए गए कर्मों के दोषों से मनुष्य वृक्ष–गुल्म–लता–वल्ली–तृणादिरूप स्थावर जाति में जन्म लेता है, वाणी से किए गए कर्मों के दोषों से मनुष्य पक्षियों की और मृगों की जाति में जन्म लेता है और मन से किए गए कर्मों के दोषों से मनुष्य अन्त्यजाति में (चण्डालादि नीच जाति में) जन्म लेता है। (मनुष्य शुभ कर्मों से देवत्व को प्राप्त करता है, शुभ–अशुभ–मिश्रित कर्म से मनुष्य ही होता है, केवल अशुभ कर्म ही करने से पशु–पक्षिरूप तिर्यग्योनि में उत्पन्न होता है। अच्छी तरह नहीं रक्षित किया गया वाग्दण्ड विज्ञान को नष्ट करता है, मनोदण्ड मोक्षरूप परम गति को नष्ट करता है, कर्मदण्ड तीनों लोकों को नष्ट करता है। वाग्दण्ड मौन है, मनोदण्ड अनशन है और शारीरदण्ड–प्रयोग तो प्राणायाम रूप में किया जाता है।) [1]

(ख) ऋचाओं का महत्व :–

पूर्वकल्प में जो वेद थे, वे ही ब्रह्म की स्मृति में आये। उन्हें ईश्वर ने अग्नि, वायु और सूर्य से प्रकट किया। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद प्रकट हुये। जैसा कि श्रुति का कथन है–''अग्नेर्ऋग्वेदों वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः।'' इस कथन से मनु को वेदों की अपौरुषेयता का पक्ष अभीष्ट था–यह पता चलता है। [1] यज्ञानि धर्म करणीय है और ब्रह्मबधादि अधर्म अकरणीय है–इसका ज्ञान कराने के लिये धर्माधर्म का सुख–दुःख रूप फल का विवेचन किया। सुख–दुःखादि से प्रजाओं को युक्त कर दिया। आदि पद से यहाँ काम, क्रोध, राग, द्वेष, भूख, प्यास, शोक, मोह आदि ग्रहण करना चाहिए। [1]

यद्यपि सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की सृष्टि मानसी है परन्तु वह सर्वथा निरपेक्ष नहीं है अपितु तत्त्वसापेक्ष है। सूक्ष्म तत्त्व से स्थूल, स्थूल से स्थूलतर और स्थूलतर से स्थूलतम क्रमशः सृष्टि होती है। [2] ईश्वर ने जिस जाति विशेष को जिस कार्य में लगाया, वह उसी प्रकार का कार्य करने लगी। जैसे व्याघ्रादि को हरिणमारण आदि कार्य में लगाया तो वे वही कार्य करते रहे। बार–बार जन्म धारण करने पर भी अपने पूर्व कर्म के फलस्वरूप उसी प्रकार का आचरण करते हैं। अतः ईश्वर के द्वारा कर्मसापेक्ष उत्तम, मध्यम एवं अधम जातियों का निर्माण रागद्वेषाधीन नहीं कहा जा सकता है। [1] सिंहादि का हरिण आदि को मारना हिंस्र, हरिणादि की अहिंसकवृत्ति अहिंस्र, ब्राह्मणादि की दयाप्रधानता मृदु, क्षत्रियादि की कठोरता क्रूर कार्य कहलाते है। ब्रह्मचर्य, गुरुसेवादि धर्म और मांसभक्षण मैथुनसेवनादि अधर्म है। ऋत सत्य ओर अनृत असत्य कहलाता है। सत्य प्रायः देवताओं में और असत्य प्रायः मनुष्यों में रहता है। श्रुति में भी कहा गया है–''सत्यवाचो देवा, अनृपवाचो मनुष्याः।'' इन कार्यों में से ईश्वर ने सृष्टि के प्रारंभ में जिसको जिस कार्य में लगाया था, वह अपने प्राक्तन कर्म के कारण उसी कार्य को करने लगा। [1] जैसे वसन्त आदि ऋतुयें यथासमय आम्रमंजरी आदि चिन्हों को स्वयं ही प्राप्त कर लेती हैं।

उसी प्रकार शरीरधारी भी अपने–अपने कर्मों को प्राप्त हो जाते हैं। [1] भू, भुवः, स्वः, महः जनः तपः और सत्यम् ये 7 ऊपर के लोक तथा अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल ये 7 नीचे के लोक हैं। ईश्वर ने इनकी वृद्धि के लिए मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैर से शूद्र को उत्पन्न किया। ब्राह्मणादि वर्ण सायंकाल और प्रातःकाल अग्नि में आहुति डालते हैं। यही आहुति वर्षा का रूप धारण करके प्रजा की वृद्धि में कारण बनती है। इसीलिए 'लोकानां विवृद्ध्यर्थं' कहा गया है। ''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादि के द्वारा श्रुति भी वर्णों की इस उत्पत्ति का समर्थन करती है। [1] ''ततो विराडमजायत'' इस कथन के द्वारा श्रुति भी विराट् की इस उत्पत्ति का समर्थन करती है। [1] मनु ने अपने जन्म का उत्कर्ष और सामर्थ्य बताते हुए कहा कि उस विराट् पुरुष ने तपस्या करके सम्पूर्ण संसार को बनाने वाले मुझे उत्पन्न किया। [1] वे ऋषि हैं– मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतुः, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। [2] मनु शब्द यहाँ अधिकारवाची है। चौदह मन्वन्तरों में जिस–जिस का सृष्टि आदि का अधिकार होता है वह उस मन्वन्तर में पृथक्–पृथक् नामों से मनु कहलाता है। [3]

इसके बाद यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण तथा पितरों के अलग–अलग गणों को बनाया। विद्युत् वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्रधनुष, उल्का, निर्घात, (भूमि और अन्तरिक्ष के मध्य रनहे वाली उत्पात की ध्वनि), पुच्छल तारा और छोटे बड़े तारों को बनाया। किन्नर, वानर, मत्स्य, विविध प्रकार के पक्षी, पशु, मृग, सर्प और नीचे–ऊपर दाँत वाले प्राणियों को बनाया। कीडे मकोड़े, पतंगा, जुआँ, मक्खी, खटमल, सभी प्रकार के डाँस, मच्छर और विविध प्रकार के स्थावरों (वनस्पतियों को) बनाया। इस प्रकार मेरे आदेश से, महात्माओं ने तपस्या करके कर्म के अनुसार स्थावर और जंगम संसार को बनाया। जिन प्राणियों का जैसा कार्य इस संसार में कहा गया है वह और जन्मादि का क्रम योग में तुमसे कहूँगा।

जरायुज अर्थात् गर्भाशय से उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि जरायुज कहलाते हैं। वेदान्तसार में भी कहा गया है–''जरायुजानि जरायुभ्यो जातानि मनुष्यपश्वादीनि।'' [1] 'अण्डों' से उत्पन्न होने वाले जीव अण्डज कहलाते हैं। वेदान्तसार में कहा गया है– ''अण्डजान्यण्डेभ्यो जातानि पक्षिपन्नगादीनि।'' पनीसे (गर्मी) से पैदा होने वाले जीव स्वेदज कहलाते हैं। जैसा कि वेदान्तसार में कहा गया है–''स्वेदजानि स्वेदेभ्यो जातानि यूक मशकादीनि''। पृथ्वी को फोड़कर उगने वाले वृक्षादि अद्भिज्ज कहलाते हैं। वेदान्तसार में कहा गया है–''उद्भिज्जानि भूमिमुद्भिद्य जातानि कक्षवृक्षादीनि''। [4] जो पुष्प के बिना फल वाली होती हैं, वे वनस्पतियाँ कहलाती हैं। जो पुष्प वाले और फल वाले दोनों होते हैं वे वृक्ष कहे जाते हैं। अनेक प्रकार के गुल्म, गुच्छ और उसी प्रकार की तृणजातियाँ, लतायें, वल्ली आदि बीज और शाखाओं से उत्पन्न होने वाली हैं। ये कर्म के कारण अनेक प्रकार के तमोगुण से वेष्टित रहते हैं। ये भीतर ज्ञान वाले और सुखदुःख से युक्त रहते हैं। निरन्तर चलते रहने वाले इस भीषण संसार में ब्रह्म से लेकर इस सृष्टि पर्यन्त गतियों का वर्णन किया गया। अत्यन्त पराक्रम वाला वह इस प्रकार से सम्पूर्ण संसार को और मुझको बनाकर फिर (सृष्टिकाल) को काल (प्रलयकाल) से नष्ट करता हुआ स्वयं अन्तर्धान हो गया। अभिप्राय यह है कि अत्यन्त पराक्रमी वह परमात्मा स्थावर और जंगम संसार की सृष्टि के स्वयं अपने में ही शरीर त्याग रूप अन्तर्धान को प्राप्त हो गया। वह प्रलयकाल से सृष्टिकाल को नष्ट करता हुआ बार–बार सृष्टि और प्रलय करता रहता है। [4]

जब वह देव जागता है तब यह संसार चेष्टाशील रहता है। जब वह शान्त होकर शयन करता है तब संसार प्रलयन हो जाता है। उसके स्वस्थ होकर शयन करने पर कर्म के अनुसार शरीर धारण करने वाले प्राणी कर्मों से निर्वृत्त हो जाते हैं तथा मन ग्लानि (वृत्तिराहित्य) को प्राप्त हो जाता है। जब जीव उस महात्मा (ईश्वर) में एक साथ लीन हो जाते हैं, तब यह सभी जीवों का आत्मा निर्वृत होकर सुखपूर्वक सोता है।

यहाँ पर ईश्वर के सुखपूर्वक शयन का कथन किया गया है। यद्यपि नित्य ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा में शयन धर्म का कथन उचित नहीं है तथापि जीव के इस धर्म का गौण प्रयोग समझना चाहिए। भाव यह है कि जब तमोगुण का आश्रय लेकर अपने श्वास–प्रश्वास आदि कार्यों को छोड़ देता है तब वह पूर्व शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को धारण कर लेता है। लिंगशरीरावच्छिन्न जीव के उद्गम से उसका गमन भी घटित होता है। जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है–''तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनुत्क्रामति। प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राण अनूत्क्रामन्ति।'' [4]

कुल्लूकभट्ट ने अणुमात्रिक की व्याख्या करते हुए कहा है–'अणवो मात्राः पुर्यष्टकरूपाः यस्य सोऽणुमात्रिकं अर्थात् पुर्यष्टक रूप सूक्ष्म मात्रा वाला। पुर्यष्टक शब्द से भूतादि आठ तत्त्वों का कथन अभीष्ट है। ये आठ तत्त्व इस प्रकार हैं–

''भूतेन्द्रियमनोबुद्धिवासनाकर्मवायवः।
अविद्या चाष्टकं प्रोक्तं पुर्यष्टमृषिसत्तमैः।।''

पुर्यष्टक रूप अणुमात्रिक जीव के विषय में ब्रह्मपुराण में भी कहा गया है–

''पुर्यष्टकेन लिंगेन प्राणाद्येन न युज्यते।
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन तु।।'' [3]